पुरंदर-पुरी

[विशाल दिल्ली की विभूतियों तथा भव्य भवनों का विशद विवरण]

श्री विद्याभूषण 'विभु' एम० ए०

जन—संस्करण

कला प्रेस, इलाहाबाद

मूल्य १॥)

अनादरणीया

बहन

श्रीमती कलादेवी

को

संसार के अनेक राष्ट्रों की राजधानियाँ बनीं और बिगड़ीं, पर जो इतिहास इन्द्रप्रस्थ अथवा पुरन्दरपुरी ने देखे, जो वैभव, उत्सव और रोमाञ्चकारी घटनायें इस विश्वविख्यात नगर में हुईं, उनका दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। आदि से प्रसिद्ध देहली में ही भारत की विभूति विश्ववन्द्य तपस्वी सत्याग्रह अहिंसा व्रतधारी महात्मा गाँधी के बलिदान की घटना ने इस नगर के गौरव को फिर से नया कर दिया है। हमारे इतिहासवेत्ताओं ने इस पुरी के संबंध में सहस्रों पृष्ठ लिखे, पर काव्यों का कारण पुरा की सीमाओं को उत्क्रान्त कर दिल्ली तक कम ही पहुँच पाई। चन्द बरदाई ने रासो में पिथौराधीश का वर्णन अवश्य किया जिनके दुर्ग के खंडहर अब तक हमें अतीत का स्मरण दिला रहे हैं। दिल्ली में आक्रमण हुए, षड्चक्र चले और हत्यायें हुईं। बार बार लूटी गयी, पतन हुई और फिर नये शृङ्गारों से सजायी गई। पुरानी होते हुए भी नित्य नूतन रही। सहृदय कवियों के लिये इस नगरी में करुण, वीर, रौद्र, शृङ्गार और वीभत्स इन सब रसों की सामग्री विद्यमान रही है। यह नगरी देश की राष्ट्रीयता की प्रतीक रही है, और हमारे वर्तमान नव राष्ट्र के स्वतंत्र होने पर पन्द्रह अगस्त १९४७ को दिल्ली का नये प्रकार से सृजन हुआ और कुछ दिन बाद ही हमने बर्बरता, पूर्ण दानवता का नाट्य देखा और फिर अपनी सब से मूल्यवान विभूति का हमने बलिदान चढ़ाया। ऐसी पुरन्दर पुरी से सम्बन्ध रखने वाला यह खंड-काव्य सहृदय व्यक्तियों के लिये अवश्य आह्लाद की वस्तु होगा।

प्रवेश दर्शन

प्रथम प्रवेश

आदि काल

इन्द्रप्रस्थ

सुनते हैं यह सुन्दर गाथा
इन्द्रप्रस्थ पहले अपूर्व था
विस्मृत स्वप्नों की रेखा सी
कभी कल्पना में आ कौंधी
अह बसन्त पतझड़ ने लटा ?

१

कल्पने ! मुझे ले चल आज उस अतीत में,
सो रहा है जहां वह भव्य भूत भारत का,
स्वर्णमय युग अब स्वप्न सा हुआ है अह !
तेरे ही मिटाये यह मिटेगी अमायामिनी।
कोकावेली-मुकुल को चंद्रिका करों से खोल
स्वर्ण कांत किंजल्कों को दिखलाती तमिस्रा मे,
रजनी कपाट खोल देती दिव्यलोक के ज्यों,
श्यामघन-पटलों को चीर कर विद्युल्लता
चमकाती चारुतर प्रकृति के वैभव को,
झाँकी उसी भाँति फिर दे दे पूर्व भारत की,
कुंजी तेरे कर में है भूत और भविष्य की।
आँज ऐसा सिद्धांजन अंध अद्य-अम्बकों मे
झलक एक बार दिखला दे दिव्य युग की,

बदल दे मायाविनि ! परोक्ष को प्रत्यक्ष में ।
जगमग नवनिधि घर घर द्वार द्वार,
नाच रही आँगन में अतीत के विभूतियाँ,
जनजनसेवा में निरत ऋद्धि-सिद्धि वही,
खेल रही चारों ओर कलित कलाएँ वही
ऐसे चारु चित्र के हम चाहक चकोर से ।
सागर के तल से निकाल मंजु मोतियों को,
ला अमूल्य मणियों को गर्भ से वसुंधरा के,
वही-वही आभा झलका दे महाशक्ति ! फिर ।
भाग्यहीन भूल गये पूर्वतन इतिहास,
ऐसी दयनीय दशा हुई है हमारी हाय !
अपने को अपना ही याद गतगौरव न
मृतकों में फिर क्यों न गिनती हमारी होवे,
है सजीव जातियों का प्राण इतिहास ही,
बिना इतिहास के अरण्य में अबोध शिशु
मारा मारा घूमता है, नहीं है आदर्श कोई
उस बनमानुस में और वन्य जन्तुओं में
भेद नहीं होगा कुछ, बात यह प्रत्यक्ष है,
देती ऐसे जन का है कल्पने ! न तू भी साथ।
खग का है प्रेम उस तरु की टहनियों से

कुलय बनाया जहाँ तिनकों को बीन बीन,
पल्लवों के पालने में झूलता प्रसन्न चित्त
बैठ कर शाखा पर गाता है सवेरे शाम,
हमसे भला है वह, प्यारी उसे जन्मभूमि।
हमसे भला है वह शैफाली का तरुवर
मातृ-चरणों में जो चढ़ाता है सुमन प्रात,
भरता सुगन्ध से समोद वायुमंडल को।
हमसे भला है वह पशु जो प्रसन्नमन
देता निज प्राण, त्राण करता है पालक का।
हमसे भले हैं जड़ कवच कुलह चर्म
रक्षा करते हैं इस अधम शरीर की
सह बार बार तलवार की प्रबल धार।
स्वार्थ परायण अब हुई है सन्तान सब
सुमन में शूल तुल्य, गेंहुँओं में कीट सम,
विघ्न बहु डालती है, काम कुछ आती नहीं,
बहु गुणवाली निज भाषा से भी प्रेम नहीं,
जन्म-संगिनी को ठीकरी सा ठुकरा दिया है।
वेश में हुआ है यह देश पूरा साहबी सा,
अपने ही देश का न जिन्हें कुछ परिचय।
मूढ़जन जानते महत्ता मातृभूमि की न,

रज में रजत और कण में कनक यहाँ,
पवन मे प्राण और त्राण त्रसरेणुओं में,
ऋत ऋतुओ में और सत श्रुतियों में अहो !
धन धरती में, ऋद्धि-सिद्धियां थी द्वार द्वार
ऐसी मातृभूमि प्यारी मेरी जन्मभूमि यही,
महापुरुषों की प्रिय जननी वसुंधरा है,
जिनकी कथाएँ लिखी काल के पटल पर,
तेरे अतिरिक्त कौन कल्पने ! पढ़ेगा उन्हें ।
प्रकृति का ग्रामोफोन गाता है समीर नित्य
अर्थहीन लगते हैं हमसे अज्ञानियों को,
तार बिना तार के उतार सकती है तू ही ।
दयावीर, दानवीर, धर्मवीर, शूरवीर,
गुणों के प्रतीक पूर्व पुरुष हमारे रहे,
सर्व-कला नाचती थीं कर के संकेतों पर,
उनके हुए हैं कृत्य अब हाय लुप्त प्रायः,
नाम शेष दुनिया में कल्पित कहानी के से ।
चक्रवर्त्ती जगजेता पूर्वज हुए हैं यहाँ,
उनके ही वंशजों ने नगरी बसाई एक,
होड़ करती थी वह दिव्य अमरावती से,
अलकापुरी के जोड़ की थी वही पुरी एक ।

यही इन्द्रप्रस्थ है क्या पथिक बताओ वेग।
यही पांडु-नगरी क्या देखने को आये हाय!
हस्तिनापुरी में जय-मंगल हैं भूमते न,
कोसों तक फैला यह टूटा फूटा खंडहर।
विषम विषाद और नीरव नैराश्य छाया
भीषण भयंकर सा होते हैं रोमांच देख।
इस सुनसान मे न दीखता है कोई जन,
शीघ्रता से बढ़ती बखेरती तिमिर घन
रजनी यह आती है बढ़ाने विकरालता।
हू हू हो हो चारो ओर करते शृगाल और
चीं चीं चमगादरों की सन्नाटे को चीरती है।
वैभव पुराना सब बिखरा पड़ा है यहाँ,
धूल मे मिले हैं हन्त! सब धन और धाम।
खाण्डव को खा गया है वह विकराल काल,
इसी-इसी भूमि में समा गया है इन्द्रप्रस्थ!
दारुण हुआ है, दुख देख कर यह दृश्य,
घट करुणा का फूटा वेदना की चोट से हा!
उमड़ उमड़ कर दृग द्वार आई वह
त्रिवेणी की धारा तुल्य बहती है भरपूर।
विलख-विलख कर रोलो हे पथिक आज,

रक्तसिंचिता को हाय धोलो हे पथिक आज,
धूल भी रहे न ऐसी सरिता बहादो शीघ्र,
हृदय विदीर्ण चिह्न यहाँ कोई रहे नहीं
जिसको प्रवासी देख फूट-फूट रोये कभी।
रोओ-रोओ फिर रोओ बार-बार रोओ तुम,
सुनता है कौन इस विजन विपिन मध्य,
एक बार फिर ऐसा रुदन मचादो सखे!
पत्थर पिघल कर बनजाय पानी पानी,
धो दो इन आंसुओं से उन दग्ध हृदयों को
जिन्होंने मचाया यहाँ जंग महाभारत का।
तुम रोते, तारे रोते, रोते तरु खग पशु,
मानो अँधियारी घटा बरसती घनघोर,
रोती है कलिन्द–सुता धीरे धीरे जाती हाय,
शोक से भरी है और वलियाँ वदन पर,
बड़ी है विकल अह! बीते हैं सहस्रों वर्ष
जब से गई है वह स्वामी सिंधु के समीप
लौट कर आई नहीं फिर कभी पितृगेह,
कैसे कह सुनावे व्यथा पिता हिमवान को।
हाय निज जीवन दे पाला और पोसा जिन्हें–
इस दुखिया सा कौन खो चुकी है सब कुछ,

हो गया है बीहड़ उजाड़ वियावान यह।
भीषण पतन कैसा विधि की विडम्बना है!
एहो धर्मराज आओ इसकी बचाओ लाज,
गदाधारी भीमसेन अपनी घुमाओ गाज,
ले लो निज धनुष धनञ्जय फिर कर में,
घेरा है पथिक यह त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!
अपनी ही नीति रीति विदुर बताओ कुछ, १२८
कर्मयोग गीता का पढ़ाओ फिर कृष्ण पाठ,
तुम भी न लेते मेरा पक्ष भीष्म पितामह,
कर्ण भी विकर्ण हुए सुनते न गुरु द्रोण।
अश्वत्थामा चिरजीवी कहते हैं तुम्हे लोग,
तुमही सुनाओ आँखों देखा हाल कुछ अब।
बना विषादादि महारथियों का चक्रव्यूह
अस्त्र-शस्त्र हीन अभिमन्यु सा अकेला वह
करता समर घोर ऊजड़ इन्द्रप्रस्थ में।
अरे कोई आओ और पूछो दुखिया की बात,
तुमको पुकारते हुई है इसे बड़ी देर,
पूरी हुई नींद क्या न बीते हैं सहस्रों वर्ष
चिर निद्रा! चिरस्वप्न! किंवा चिर अचेतना!
फिर एक बार तार-स्वर से पुकारता है,

तूती की नक्कारखाने मे न सुनता है कोई,
अरे क्या न कोई यहाँ पूछता जो कुछ बात
इस पटपर मे न बूझता पहेली कोई,
यही खंडहर हैं क्या इन्द्रकी पुरी के हाय ?
स्वर्ग धाम तुल्य यही–यही नगरी क्या वह
जहाँ धर्मराज ने किया था राजसूय यज्ञ,
जिसमें जुड़े थे देश देश के नरेशवृन्द
स्वागत के लिये जहाँ कृष्णचन्द्र भगवान,
वहाँ नहीं टेर सुनता है कोई देर हुई,
मय मायावी का जहाँ मृग की मरीचिका सा
था विचित्र चित्तहारी महल मनोज्ञ अति,
निर्झर-प्रभा के झरते थे नित्य अजिर में,
दिव्य मय-मण्डप से ज्योतियाँ सुमेरु की सी,
रजनी बसेरा लेती कभी आस पास भी न,
धर्म से सदैव दूर कालिमा कलंक की ज्यों,
चमकता तारा दिव्य छायापथ-शोभा मध्य,
देख कर चित्रकारी चकित हुए थे सब।
थल दीखता था मानो जल से भरा है और
जल दीखता था मानो सूखा सूखा थल यह,
बड़े बड़े बुद्धिमान खा जाते थे धोखा यहाँ

वसन सँभालते थे थल को समझ जल
भीगने के भय से बचाने का प्रयत्न कर,
जल को समझ थल आगे को बढ़ाया पैर
गोता खाने लगे झट सलिल सरोवर में।
महल अनूप वह जग की विभूतियों सा
विस्मयकारी वैजयंत अह! कहाँ है आज
अम्बर दिगम्बर को जिसकी जयन्तियाँ
सदा पहनाती इन्द्रचाप के विमल वस्त्र
उन पर हो रहा था तारकों का काम्र मानो,
खेल खेलते थे भानुचन्द्र बारी बारी जहाँ,
रज की रजाई ओढ़ सोता अब रम्यपुर।
सपना सा हुआ गत-गौरव उसे है आज
दिन रात छाती पर कुचक्र झंझावात का
रोक टोक बिना यहाँ घूमता बवंडर है
मोद भरे नाचते आमोद के फव्वारे जहाँ
और जहाँ नन्दन से उपवन अनेक थे।
उनमें विहार करते थे नृप इन्द्र तुल्य
कहीं केतकी थी खड़ी सुरभि लुटाती यहाँ,
वायु भर देता था सबेरे वह बेला कहाँ!
कलियाँ गुलाब की चटकती नहीं है अब,

पेड़ पारिजात से अशोक कचनार आम—
ऊसर हुआ है हाय चर गया काल सब।
अब इस बीहड़ में दीखते विहंग वे न
अपनी जो बोलियों से अमृत बरसाते थे,
उड़ गये कौन सी दिशा को इसे छोड़ आज,
ले गया पकड़ कौन निर्दय बधिक उन्हें।
चिल्लाते हैं गिद्ध चील, दावतें उड़ाते कंक,
श्येन महाभारत मचाते बैठ शव पर,
जाल काटते हैं कोई मुर्दे की अतड़ियों के,
तैर से रहे हैं कोई शोणित-सलिल मध्य
दिल के किये हैं दोनों शीशे चूर चंचु मार,
दिल को ही ले भगा है अधम नृशंस एक,
तड़प उमंगें रहीं उसी भग्न हृदय में,
एक अंधे कोने में छटपटाती आशा क्षत,
रौद्र स्वांग रच रही अमर निराशा वहाँ,
कूकर कसाई मांस नोचते हैं बार बार
और कोई हड्डियों को चट चट तोड़ते हैं,
विकट विभीषिका सा हुआ इन्द्रप्रस्थ आज—
भेड़ियो के भिट और मांद मांसाहारियों की,
खोह गोह खरहों की, बनजन्तुओं के बिल—

फेरु फिरते हैं और पागल शृगाल रोते,
भीषण है दृश्य यहाँ जाता है दहल दिल।
यहीं नगरी क्या कोषपालकी पुरी के तुल्य
जहाँ चन्द्रचुम्बी चन्द्रशाला थीं अनेक ऐसी
अंक में सौदामिनी को सतत खिलाती रहीं,
धोते मेघ-मण्डल थे मणिमय अजिर को
और इन्द्रधनु की बुहारी जहाँ लगती थी। २०८
सुषमा सरोवर की कहते न बनती है,
चाँदी पिघलाई मानो जल था विमल ऐसा,
कलई चढ़ाते पुण्डरीक राजहंसों पर,
रक्त अरविन्द के मृणाल खाते-खाते नित्य
आई थी मराल के ललाई चंचु-चरणों में,
तारकों के प्रतिबिम्ब मंजु उत्पलों के मध्य
प्रस्फुटित शुक्तियों में मौक्तिक मनोज्ञ मानो।
ज्योतिर्मय छायापथ अम्बर से उतरा था,
जल-जीव खेलते थे जिनमें रंग रंग के,
लहरों का तनते थे तरल वितान मंजु
अपने लिये ही गूढ़ बिनते सलिल-जाल
ग्रंथि जिसकी न कोई खोल सका आज तक।
जलवल्लरीसी उतराती है कल्लोल लोल,

फूलते बबूले चलवृंत पर पल पल,
पवन बनाते मानो फूँक फूँक शीशियाँ हैं।
वैभव विपुल वह बिला गया बबूले सा!
झर गये झरने हैं शरद में तरुओं से।
उजड़ उद्यान गये बहा है प्रचण्ड वायु,
सर लिये सोख ऐसा आया है अगस्त्य कौन?
आचमन कर गया छोड़ी एक बूँद भी न,
धरते धरोहर थे रहे न सरोवर वे,
नीर के निकेतन थे शांति के निकेतन से,
जहाँ ग्रीष्म आतप की होती न पहुँच कभी
पुण्यतोया पुष्करिणी प्राप्त पञ्चतत्व हुई,
प्रक्षालन करती थी पण्यवीथियों को नित,
गाती थी तरंगिणी जो बाग होते बाग़ बाग़,
उमड़ तड़ाग अनुराग दिखलाते अति,
हँसते सरोज और पर्ण नृत्य करते थे,
एक दूसरे की सब सुषमा बढ़ाते सदा
अब वे न वापी रहीं सर न तड़ाग रहे!
अन्त अनुराग हन्त! शोभा चिरवसन्त की।
मन्दर सुमेरु के समान कहाँ गोपुर वे
जहाँ बैठ देखते थे दृश्य देव नगरी का,

जहाँ सूर्य-चन्द्र-तारे पहरा बदलते थे,
मेघ-गर्जना सी जहाँ घोषणा नगाड़ों की थी,
गर्व अर्वली को बड़ा गोपुर शिखर पर।
कनक कलश धोते कालिमा कुहू की सदा,
देखते अवश्य होंगे तारा तारालोकवासी,
आह! वही गोपुर अगोचर हुआ है आज।
आयु बल खो चुकी है, खोज अभी पाया नहीं
दूर दूर हेरती विलोचनों को फार फार,
कैसे समझावे इस अर्बुदावली को कहो,
कहाँ शोभनीय सिंहपौरि के उभय द्वार
खुलते थे दोनों मानों पक्ष खगराज के दो,
ले गया उड़ा कर इन्द्रप्रस्थ को यहां से कौन?
नहीं इन्द्रप्रस्थ आज, नहीं है गरुड़-द्वार!
रक्षा करती थी खड़ी खड़ी दिनरात वही
खाई में समाई तुंग प्राचीर सुदृढ़ चौड़ी
जिसकी दिवाल पर हय-गजरथ-यान
करते प्रदक्षिणा थे नगर की दौड़ दौड़।
खाई या सुखाई किस खल ने है खाई अहे!
धसक पाताल गई पापियों के भार से या
बनी है गगन-गङ्गा भूतल की अनीति से

घूमती प्रभूतजलपरिखा थी चारों ओर,
चलते थे पोत बहु माल लाद लाद कर ।
सेतु थे, अनोखे, केतु लहराते उन पर ।
न्याय की तुला से सत्य तौलता दया के पराय,
बाट शील के थे और प्रेम यातायात था ।
श्रुति-कामधेनु मंजु घर घर राजती थी,
वाणी दुहती थी क्षीर श्रोत-दुग्ध-भाजन में,
मन नवनीत लेता, बुद्धि घी निकालती थी,
करती कल्याणमयी संसृति को सुरभि से
अनायास हाथ आते जगसिद्धि-स्वर्गसुख ।
लालकोट कैसी चोट दिल को लगी है तेरे
याद कर कर यवनों की अकृतज्ञता को
छार छार हो रहे हो, जार जार रो रहे हो,
धराशायी हुई पृथ्वीराज की विभूतियाँ हैं,
वीरता हुई है सती शब्दवेधी शूर-संग,
ईर्ष्या के अखाड़े मध्य कायरता खेलती है
देती है दुहाई देशद्रोही जयचन्द्र तेरी ।
आभा अंशुमाली की निशा में चंद चमकाता
धन्य कवि चन्द पृथ्वीराज के गुणों को लेले
रासो द्वारा राशिवर बरसाई घर घर ।

छलियों के साथ छद्म व्यवहार किया होता
दुर्ग तेरी दुर्गति न होती ऐसी शोचनीय,
यवन प्रवेश हुआ होता इस देश में न,
घातक न होता कोई देश की स्वतंत्रता में।
पूछो कुरुक्षेत्र की कटीली इन झाड़ियों से,
सींचा है हमारे पूर्वजों ने रक्त दे दे इन्हें,
यही-यही धर्मक्षेत्र अस्थियाँ बिछाई जहाँ?
यही-यही पुण्य कुंड मुंडों से भरा था जिसे?
ढीली क्यों पड़ी थी अरी कीली तू अनंग की?
दिलू गये, दिल्ली गई, दिल की उमंगें गई,
नाचती निराशा इस नीरव तिमिर में,
दुनियाँ दीखती है सूनी सूने दिल वाले को।
ऊँचा होता माथा लोहलाट तेरा जग में
देख देख जिसे रिपुओं के झुक जाते सिर,
शर के समान छेदती थी शत्रुओं के उर,
लीप लोक-लाज आज दारुण व्यथा का हेतु
हो रही है मित्र-मण्डली को तेरी रूपरेखा
मानगत, प्राणहत, गौरवविगत सब,
भीरुओं के साथ भयभीत सी हुई है मानो,
भारत की वीरता का साका एक बार बोल

ताली तेरे कर। स्वर्ण-भूत दिखला दे फिर।
प्रतिकूल काल लख कालिन्दी के कूल पर
पड़ी थी सशोक लाट प्रियदर्शी अशोक की,
नाम खो खड़ी है आज, करती विडम्बना है,
कहाँ वह भव्यपुरी वैभव-विलास जहाँ!
कहाँ चक्रवर्ती नृप अतुल ऐश्वर्यशाली?
कहाँ राज-महिषी जो सुर-अंगना सी दिव्य?
कहाँ राजपुत्र प्रिय लोचनो के तारे तुल्य?
राज-परिषद कहाँ, कहाँ विज्ञ मंडली है?
कहाँ हैं सामंत वीर जंगजीत जगजीत!
विजय-पताका-प्रभुता का न पता है आज,
भस्म शुचि भी न शेष उन चक्रवर्तियों की!
श्यामल घनों मे कभी दामिनी की दमक सी
स्मृति की झलक आती दुर्दिनों मे यदा कदा।
जहाँ कृष्णपांडवों की मंगलमयी मंत्रणा
विमल विज्ञानमयी गीता-शुचिगंगा जहाँ
कालिन्दी-सहयोग से बहाती भक्ति त्रिवेणी
वहाँ अब रो रहे हैं यवन-भवन खड़े
निज गतवैभव को जर्जरित अवस्था मे।
बतला निगमबोध तेरे घाट आज कहाँ

श्रुति पाठ यज्ञ होम तप व्रत शम दम !
कोषगत हुए गुण, दोष उतरे हैं यहाँ,
रोष रुद्ररूप रख रावण सा दौड़ता है,
पाप ताप दाप अपकर्ष की जमी है जड़,
तमतोम साथ आई घोर विकरालता है,
वेदने ! दिलासा अनुपान तेरे रोग का है ।
विलख कलिन्दजा ने कहा "सुन सर्वगति !
करती विहार तीनों लोक तीनों काल में तू
घर घर पहुँचादे सँदेसा मेरे दुख का,
शून्य अन्तराल भरती है निज संपदा से
भरदे सपदि मेरे सूने अन्तःकरण को ।
भूलूँगी भलाई न कदापि वारिदवाहिनी !
मेरे इस जीवन की आह बरसा दे सखि !
उन मुमूर्षु आहों पर उठें घनघटा सी
तड़प तड़ित तुल्य तड़पन हृदयों में,
तीव्रता बढ़ा दे उग्रता की ज्वारभाटे सम
सदियों से सोते हुए जग जायँ भारतीय
अंत हो तुरंत अह ! दुरंत आपदाओं का
कायाकल्प कर जगजीवन ! आर्य जाति का ।
याद वह दिन क्या न सखि ! तुझे आह अब

श्रुतियों का स्वर मंजु तृप्त हव्यगंध से हो
तेरे अंक खेलता था, खोलता था कली कली
शब्दमयी महि और गंधवान गगन की,
आमोदित भुवन का देश देश द्वीप द्वीप
ब्रह्मानंद लूटते थे मंत्रमुग्ध प्राणी सब।
देखा रोमराज तूने विपुल समृद्धि-शाली,
देखी सुख-सम्पदा है कारथेज नगरी की, ३५८
ग्रीस का सुयश दोनों हाथ तू लुटाती रही,
गाती रही गीत सखि! बेबलिन-नैनवा के,
और कितनी ही पुरी जग में प्रसिद्ध हुई
दिव्य इन्द्रप्रस्थ तुल्य सजनि! न देखी होगी,
देश परदेश में अनेक देखी सभ्यता हैं,
पतन हुआ है तेरे लोचनों के आगे आगे,
माया की न माया शेष, इनका का तिनका न।
सुख के दिनों की याद आती बार बार मुझे
सिर धुन धुन और छाती कूट कूट कर
फूट फूट रोती हूँ अकेली सुनसान में।
दुख का न साथी कोई, सुख के सगे हैं सब,
पूछता नहीं है कोई विपदा में बात मेरी।"
"सखि! न अधीर हो," बयारि ने सशोक कहा,

"दिन एक से न दुनिया में देखे जाते कभी
संकटहरण भगवान का भरोसा एक
जिसके सहारे अग जग संसार सब।"
गला भर आया समवेदना के साथ साथ,
वायु की शिथिलता बढ़ी अर्कजा उछ्वासों से,
विजन डुला डुला सचेत जमुना को किया।
"पिता लोकलोचन! सकल जग लीला-धाम,"
रवितनया ने कहा, "बतलाओ मुझे आज
देखा तुमने है वह लन्दन नगर रम्य,
पेरिस की गलियों की सैर करते हो सदा,
बर्लिन-विज्ञान-लीला देखते हो दिनरात,
टोकियो के सुमनों को आप ही जगाते नित्य,
चक्कर लगाते नई दुनिया में जब तात!
झाँकते सतत ऊँची ऊँची चन्द्रशालाओं में,
अविकल कलाएँ कलों की, कलाधारियों की
चमत्कार दिखलातीं न्यूयार्क से नगरों में
कलानाथ बने इन्द्रप्रस्थ की कलाओं से ही
जैसे तात-तेज से विभावरी में कलाधर
सचेत अन्य आशाएँ यहाँ के ज्ञानोदय से।
प्रभा बरसाते जिन प्रासादों में प्रात! तात!

पुण्यदर्शनों से सदा करते थे तृप्त जिन्हे
महल मनोज्ञ कहाँ ! कहाँ मानवेन्द्र आज !"
मुझसी अभागिनी न देखी होगी महि पर
दुखिया सुता को निज कर का सहारा दिया,
सान्त्वना दी फिर शोक विह्वला को बार बार,
"अज्ञात के अतल में, विस्मृति के वितल में
बिला गया–बिला गया तेरा प्यारा इन्द्रप्रस्थ, ३८०
शून्य की अनन्तता में, कल्पनाविहीन 'विभु'
रहा अह ! अवार ही, अतीत वतलावे क्या–
करुणा-कल्लोल उठे उमड़ उमड़ कर,
झर झर तारे झरें निर्झरों की सीकरों से,
अन्धा आसमान रोवे फूट फूट अविरल,
वहजावे सृष्टि यह प्रलय के प्रवाह में.
गोदी का लुटा हा लाल ! प्रकृति सवेरे शाम
विलख विलख कर रुदन मचाती यहाँ,
"प्यारा इन्द्रप्रस्थ कहाँ ! मेरा इन्द्रप्रस्थ कहाँ !"
बंद लोचनों के आगे झूलता है रम्य चित्र
यही स्वर्ण युग का है स्वप्नमय इन्द्रप्रस्थ। ३९१

द्वितीय प्रवेश

यवन काल

दिल्ली

बसे हुए संसार दो—
भू ऊपर, भू गर्भ में,
दहली का कंकाल यह
अति विशाल मोहक महा
विवशताश्रु से धो रहा
भग्न भावनाएं अहह !!!
शारदीय शोभा निहत
पंकज पर पाला पड़ा !

२

पितृवन में क्यों पथिक ! अकेले घूमते
इन्द्रप्रस्थ है नहीं इन्द्रियों का विषय,
इस अवनी में प्रबल राजकुल खो गये,
कितने ही सो गये नृपति इस अंक मे
धरा दहलती थी जिनके आतंक से,
भव-बाधा के बंधन से उन्मुक्त हो
पर दिल्ली परिणाम-शूल से तड़पती।
मरने पर भी मिटा न इसका मोह है.
ममता से यह म्लेच्छ दबाये मेदिनी
मरघट में भी फैला माया जाल है,
किं कर्त्तव्य-विमूढ़ मूढ़ मानो हुए
महिमा समझे नहीं तनिक भी मृत्यु की,
नूतनता का एक वही आधार है,

करती काया-कल्प अल्प ही काल मे,
जीवन के जंजाल वही है काटती
स्वर्ग-सुखों के लिये मृत्यु ही द्वार है।
जो जीवन का मूल्य न पामर जानते
खाना-पीना और भोग ही ध्येय है,
दया दिखाई नहीं जिन्होंने दीन पर,
पर को वश मे किया न जिसने प्रेम से
प्रभुता को पा चले न जग मे नम्र हो
जिनकी हुई न भूति भलाई के लिये
उनके अंतःकरण मृत्यु से कॉपते।
द्वेपानल सी टीक दुपहरी चिलकती,
ईर्ष्या सी लू लिपट रही है अंग को
और क्रोध सा भानु हुआ विकराल है,
मत्सरता सी भूभल भू पर धधकती,
तीन ताप को उगल रही है धरणि यह,
पवन वमन कर रहा कलह के गरल को,
बुरी वृत्तियां मानो सारी जग रही
सुलग रही है चिता सकल ऐश्वर्य की।
पथिक अभागे! आज प्रज्वलित भाड़ में
तज कर गृह-आराम आ पड़े किस लिये

ज्ञात न क्या "हिनोज़ दिल्ली दूरस्त" यह ?
प्रेतपुरी मे क्यों प्रवेश तूने किया
जिज्ञासा क्या तेरी होगी पूर्ण "विभु" ?
कितनी ही आशा लतिकाएँ इस जगह
मुरझा कर गिर पड़ीं फूलते फूलते,
कितने ही महिपाल - मनोरथ - मंजुमणि
चूर चूर हो मिले इसी रज रेणु मे ५८
कितनो के सुख-स्वप्न न पूरे हो सके,
सारा ही आनन्द किरकिरा हो गया,
मिट्टी में मिल गया मोद का नाम ही
भोक्ता सब खा लिये विभुक्षित भोगने,
मुँह दिखलाने को भी रहा न दर्प को
सब विनोद चल बसा रसा नीरस हुई।
चहल पहल है नहीं किसी भी महल में
सुप्त नगर में सोती है सद्वृत्तियाँ
है भूतों के भवन जोगिनी जग रही
गोपतियों को खींच ले गई पंच गो
स्वेच्छाचारी बने त्याग नृपनीति को
यम को यम सा यवन नियम को निगड सा
जान दमन से दूर क्रूर रहते सदा।

दिल्ली तेरी रँगी रक्त से जवनिका
भीषण हत्याकांड हुए तव मंच पर
तव नाटक के हृदय-विदारक दृश्य हैं
आ जाते जो याद स्वप्न मे भी कभी
हो जाता रोमांच दहल जाता हृदय।
तुझ सा सूनागार न कोई अन्य है
सदियों खेला फाग रुधिर से चंडिके!
तव प्रांगण में रूंड मुंड थे लोटते
तेरी ऐसी प्यास कभी बुझती नहीं।
पानीपत पर तीन बार पत खो चुकी
आडंबर में नाच चुकी धर्मान्धता,
चिने भित्ति मे जीवित गुरु के लाडले
गुरुहत्या का टीका तेरे भाल पर,
हिम्मत देखी बाल हकीकतराय की
हंस कर अपने प्राण निछावर कर दिये,
बोटी बोटी कटवा वन्दा वीर ने
वैरागी-अनुराग दिखाया इस तरह,
व्रत को भंग न करते तन के लोभ से
देश धर्म ही भक्तो का सर्वस्व है।
हुई दाह लीलाएँ तेरी वेदि पर।

नगर जलाता हुआ चढ़ा तैमूर जब
कतलआम तेरी गलियों मे मच गया,
तृप्त हुई मरु-हिंसा शव पर नाच कर।
लाखो घर के जलते दीपक बुझ गये,
लाखो माँ के लाल गोद से लुट गये,
लाखो प्यारे तनय पिता से छिन गये.
लाखो भाई हुए बहन से हा विदा
लाखो वधुओ का सुहाग जाता रहा,
लाखो को ले गया साथ मे नारकी,
विधवो के विलाप से रोता गगन नित
पवन अनाथो की हा हा से व्यथित है।
यह प्रलयंकर बाढ़ बहा कर ले गई
भारत से सम्पति सकल वैभव कला।
कई दिनो तक यही अराजकता रही
घर घर मे संताप शोक दारिद्र्य ने
जमा लिये थे पैर नगर मृतप्राय था।
शाहजहाँ का प्यारा दारा विज्ञवर
भारत भावी भूप छली औरंग ने
गज-पद से जग-पद से न्यारा कर दिया।
तैमूरी तूफान अभी भूले नही

नादिरशाही भी आ पहुँची शीश पर
प्रबल बवंडर उठा एक ईरान से
इन ध्वंसो के सदृश्य नगर करता हुआ
दिल्ली मे आ रुका भयंकर रूप हो,
जहाँ जहाँ वह गया विजय की दुंदुभी
बजती नादिरशाह नृपति की सर्वदा
मार काट धन लूट नगर का फूंकना
उसका था यह ध्येय आततायी प्रबल
भरवाता भुस खाल खिंचा उस मनुज की
जो न निरंकुश इच्छा के अनुकूल था
रंग-महल में छिप कर नृप महमूद ने
बचा लिया था अपनी दुर्वह जान को
किन्तु पुरंदरपुरी बुरी गति में पड़ी।
दुर्रानी के हाथों दिल्ली दलित हो
भूल गई क्या दुर्गति तेरी जो हुई
दुख पाती ही रही कभी पनपी नहीं।
मुग़ल-राज्य-श्री चली ज़फर के साथ ही
षड्यंत्रों का केन्द्र सदा से तू रही,
है सर्वत्र प्रसिद्ध कुचक्रों की धुरी।
वीर शिवा जी को अपना बन्दी बना



नूतन शिष्टाचार दिखाया विश्व को।
सती हुई श्रद्धा अपना आनंद ले।
हंत ! अहिंसा का हिंसा ने वध किया
सत्य-प्रेम-सेवाश्रय गांधी वह कहां
सदियों की धोई है तेरी कालिमा
जिसने प्राणों को दे अपने रक्त से ?
अत्याचार अनर्थ एक से एक बढ़
तेरे घर मे हुए न गिनती हो सके,
तिल तिल तेरी भूमि भरी उत्पात से
मानव को कर देती तू मनुजाद है
पाली पोसी गई सदा ही रुधिर से
शोणित से है सनी हुई रोमावली
पीती है तू प्राण मनुष्यों का अ ह ह !!!
काली तेरा नर कपाल ही पात्र है
नर बलि से तू होती सदा प्रसन्न है।
अह आगतुक ! मरघट में क्यों भटकते
परिचित क्या प्रिय सोया कोई इस जगह
चिर निद्रा सुख लूट रहा है जो यहाँ
खोया सा कुछ खोज रहे हो देर से,
इस बस्ती में जो आया सो खो गया।

या तुम भी हो व्यक्ति इसी परिवार के
जो आये हो लौट अभी उस लोक मे
इस परिवर्तनशील जगत को देखने
जीवित हो या प्रेत कहो अपनी कथा,
यह दिल्ली वह नहीं छोड़ जो तुम गये।
लगा हुआ है सदय नित्य आवागमन
फिर मैं कैसे कह सकता हूँ, कौन हूँ
चलता फिरता शव ही समझो हे सखे
जब मैं इनमे जान न सकता डाल कुछ।
इस दिल्ली मे दास वंश-दीपक बुझा,
यह दिल्ली खा गई खिलजिओं को अहह !!!
इस दिल्ली में तिरोभूत तुगलक हुए
इस दिल्ली में समा गये सैयद प्रबल,
इस दिल्ली में लोदी जान लुटा चुके
इस दिल्ली में अस्त हुई सूरी प्रभा
इस दिल्ली में मुगल मही में मिल गये।
इस दिल्ली में—इस मायावी नगर पर
कितने ही भूपाल निछावर हो गये!
कितने दिल्लीपति दारुण दुख झेल कर
पड़े हुए हैं इस उजड़े संसार में,

शाही दुनिया सोती है इस धूल में।
किसकी दिल्ली हुई, साथ किसका दिया ?
दिल में आशा और दिलेरी साथ में
लेकर आये नरपति देश विदेश के
लौट न पाये पड़े रहे आवर्त में।
दृढ़ बंधन का हेतु वासना लोक में।
लुटा चुके हैं अपना अपना कारवाँ
धन से, तन से, जीवन से वंचित हुए,
धन की ममता मोह न रमता राम है.
जीवन का अपहरण मृत्यु ने कर लिया
काया प्राण विहीन पड़ी है कब्र में।
जीवित में जो श्वान सदृश लड़ता रहा
दिल्लीपतियों का यह राज-समाज है।
पास पास हैं फिर भी विगत विरोध है
रहे न ईर्ष्या द्वेष मनोमालिन्य अब।
जब विलासिता ने अपना घर कर लिया
धर्म, न्याय, बल, सदाचार चलते बने
उतरा तब अविवेक साथ ले गृह-कलह
शासन-अर्थी सृजन हेतु दो युवतियाँ
एक विरूपा उग्र रही धर्मांधता

तथा दूसरी अति भैमी उद्दंडता
आई थीं सजधज कर शाही शहर में।
श्रेय प्रेय का अन्तर जो हैं भूलते
भूल भुलैयों मे जग की वे भटकते.
शव-गर्तों में बाट जोहते स्वर्ग की।
अचल कुतुब के सदृश कुतुब मीनार यह
यवन राज्य की प्रथम मेख सी दृढ़ खड़ी
बजा रही है दासों की जय-दुंदुभी
छीन - छीन देवालय - दिव्यविभूतियाँ
रचना की है इसके रम्य शरीर की
नर के दुष्कर्मों की चुगली खा रही
देश दासता के प्रतीक की लीक सी।
बिता चुकी सुख दुख की सदियाँ शीश पर
अष्टधातु सी दृढ़ लोहे की लाट यह
हिन्दू संस्कृति की अजरामर कीर्ति सी.
धरा अक्ष की बहिर्निर्गता नोक सी.
तीर्थराज के अक्षयवट के स्थाणुसी.
चन्द्रदेव के पुण्यश्लोक-प्रमाण सी.
कुतुब महल प्रांगण में घोषित कर रही
आर्य जाति के गौरव का इतिवृत्त गत

नत हो सुनती उसे कुतुब मीनार नित।
क़ब्रों की दादी लघु सुन्दर क़ब्र यह
भूप अल्तमश का चिर निद्रावास है,
यवनों के हित हुई हिन्दुओं की कला
खड़ा अधूरा भवन अधूरी आस सा।
दारुल अमन समीप वीर बलवन नृपति
चिर निद्रा सुख लूट रहा निज पुत्र सह,
जीवित जिनके लिखा नहीं सुख भाल में
पा जाते विश्राम विपुल शव-लोक में।
हे मुर्दों के शहर! न जाने खा लिये
कितने शाहंशाह चक्रवर्ती प्रबल।
छली अलाउद्दीन अतिथि तेरा बना
वसुधा को भी पा न जिसे संतोष था
तीन हाथ ही भूमि उसे पर्याप्त है,
आतंकों का अन्त सदा भव-भूमि में।
दुर्ग दौलताबाद पृथुल कंकाल सा
खड़ा मक़बरा उसमें तुगलक शाह का
पागलपन थक कर दुनियां से अन्त में
आश्रय लेता है झीलस्थित क़ब्र में।
रज़िया बेगम नाम सभी की जीभ पर

एक दिवस था जपता लोक-समूह था
नाम न तिथि है सुल्ताना की कब्र पर
भारत की मलिका की भग्न समाधि है।
यमुना तट पर टूटे फूटे खंडहर
याद दिलाते रम्य कोटिला दुर्ग की
भस्मसात होते ही नृपति फिरोज के
भूमिसात हो गया सकल ऐश्वर्य भी।
दीर्घ पुराने किले मध्य आवास यह
दो मंजिल का महल शेरमण्डल खड़ा
हुआ हुमायूँ-निधन-हेतु दृढ़ जाल सा
कर न सका जो शेरशाह तूने किया।
मंजु मकबरा बना रुचिर उद्यान में
परिचय देता सफदरजंग नवाब का
कृतियाँ ही सुस्मृतियाँ हैं संसार में
परिमल ही परिचायक प्रमुदित पुष्प का।
तेरी शुचि दरगाह औलिये शांतिदा
चिरनिद्रा सुख लूट रहे सतसंग मे
सुधी साधु सामंत शाह पंडित प्रवर
वेस्टमिनस्टरगर्वा सी यह मानदा।
'दिल खुश चश्मा' धो देता है हृदय को

प्रभु की चर्चा हित था मित्र चबूतरा
कहां औलिया और कहां हैं वे सखा ?
अहा "तूतिये हिन्द" तुम्हारा वाङ्मय
वहा रहा वसुधा पर परिमल अति विशद
भावुक होते तृप्त जिसे परिघ्राण कर
विचरण करते सद्य कल्पना जगत मे
सुन्दर सुन्दर सुमन चयन कर चमन मे
खुसरो ! कवि हो गये अमर तेरे सदृश
मैं भी उतरा तेरे भावालोक मे
लग जायें कुछ मणियां मेरे हाथ भी
अर्पण कर दूं उन्हें शारदा के सदन।
तृण आच्छादित हरी मनोज्ञ समाधि है
कीर्ति हरी हो रही तुम्हारी लोक में
कोई साधन नहीं प्रसाधन के यहां
तदपि देवि ! तुम सत्य जहांनारा हुई ।
कविता का कमनीय कलेवर काव्य मे
सज्जित तुमने किया खानखाना प्रबल
भाषा भूषित हुई मिली रचना रुचिर
थे रहीम तुम सदा द्रवित पर दुःख से
दोहे मे वर नीति अनूठी युक्तियाँ

भर दीं हे कविश्रेष्ठ ! गुणों के पारखी ।
यह सम्मुख है भव्य हुमायूं मकबरा
दिये प्राण थे बाबर ने जिस पुत्र हित
दफ़न इसी में वही दुलारा लाल है,
मृत्यु न बलि से टल सकती है अवनि पर ।
आज़म कुल को आश्रय देती प्रेम से
चौंसठ खंभे तेरा हृदय विशाल है,
इस मरघट में दफ़न हुईं चौंसठ कला
कौतुक दिखलाती हैं चौसठ जोगिनी ।
भूमंडल की भूल भुलैयां भूल कर
दहली तेरी भूल भुलैयों में पड़ा
अपनी जननी सहित अधम चिरकाल को ।
वेध लिया तारों को इस सम्राट ने
सूर्य-चन्द्रमा बने समय की सूइयाँ
कीर्ति सवाई हुई नृपति जयसिंह की ।
तीर्थंकर सी लम्बी लेकर आयु यह
श्रीशोभासंपन्न जैन मन्दिर खड़ा ।
राजपुरुष, सामंत, शाह, सेनिप, कुँवर
जो थे प्यारे अतिथिशिरोमणि एक दिन
अय सलीमगढ़ ! तेरे वे बन्दी बने

रक्षक भक्षक बना दिनों के फेर से।
शाहजहाँ का प्यारा सुन्दर यह नगर
कमला का आवास मनोरम अन्यतम,
सृजन कलाओं का होता था नित नया
वैभव बिखरा पड़ा चाँदनी चौक मे
जहाँ सघन कुञ्जों की श्रमहर बीथियाँ
शीतल सलिला बहती थी स्रोतस्विनी।
स्फटिक शिला निर्मित शुचि भव्य तड़ाग था
क्रीडन करती रंग बिरंगी मछलियाँ,
फव्वारो का जहाँ निरन्तर नृत्य था,
सूर्यातप भी शीतल जैसे चाँदनी,
उद्यानों मे उत्सव आठों याम थे,
हाट बाट मे चहल पहल रहती सदा
नाच रंग की घर घर संतत धूम थी
उर-उमंग के उत्स प्रवाहित चतुर्दिक।
ये सब अब सपने ही सपने रह गये।
कहाँ गई वह शोभा शालीमार की?
कहाँ मुबारकबाद मुबारकबाग का?
रहा नहीं रोशनआरा उद्यान अब।
नाम मात्र ही रहा कुदसिया चमन का।

तालकटोरा अब है नृ वैताल घर
वे उपवन उद्यान, वाटिका, वन. चमन
नन्दन से थे कभी तिरोहित हो गये।
मंजु कंज पर भृंग पुंज गुंजन कहाँ?
खग-वृन्दों का कुंजन कहाँ निकुंज में
परिमल में परितृप्त न बहता अनिल है।
मस्त बना देती सुगन्ध महताब की
कहाँ कौमुदी उत्सव की वह वाटिका।
दीर्घ आयु हो जाते जिसमें भ्रमण कर
रहा नहीं वह जीवनप्रद उद्यान हा!
जामा मसजिद प्रभु-पूजा-प्रासाद यह
स्फटिक शिला पर शाह संग जब यवन जन
'अल्ला हो अकबर' के नारे नित लगा
प्रतिध्वनि से भर देते थे वातावरण
शीघ्र प्रार्थनामय हो जाता नगर तब।
शाहजहाँ के भवन भुवन विख्यात जो
लोहित प्रस्तर खण्ड विनिर्मित दुर्ग में
शोभा में अभिराम रम्य आराममय
अपना कौतुक स्वयं दिखाती थी कला
लख कर रचना रुचिर अलौकिक रसमयी

हो जाते थे मुग्ध विश्वकर्मा स्वयं।
विधि विडम्बना! अब वे विस्मृत स्वप्न से
दिखला देते झलक कल्पना-लोक में।
नौबतखाने में न नगाड़ा बज रहा
रनिवासों का रहा न मृदु संगीत है।
रहा तख़्तताऊस नाम ही शेष है।
महलों में 'नहरे बहिश्त' बहती नहीं।
कहाँ केतकी - कस्तूरी - आमोदमय
सुरसरिता का स्रोत सुभग हम्माम है।
ख़्वाबगाह दुनियाँ का केवल ख़्वाब अब।
सायंतन अम्बर डम्बर सुषमा सदृश
रंगमहल की रंगत फीकी पड़ गई
आह! मुसम्मन बुर्ज झरोखा शून्य है।
न्याय तुला का चित्र भित्ति का आभरण।
नीरस हृदय सा संगमरमर कुण्ड यह।
इन वराक नग-नागों को क्या ध्यान कुछ
रहा न हीरामहल न मोतीमहल है!
जाफ़र महल का बोल चुका अब दमदमा
रत्न-राशि के चाकचक्य से चमत्कृत
शाहबुर्ज की शोभा ओझल हो गई

बिन्दु बिन्दु मे इन्द्रधनुप चित्रित रहा
वह बहार 'सावन-भादों' की अब कहाँ !
देश देश की मञ्जुल मणियों से खचित
भव्य भवन 'दीवान-आम' यह सामने
शोभित था सुषमा से निज उपमा रहित
पारस के सागर से मुक्ताफल विमल
ब्रह्मदेश के पद्मराग अतिशय अरुण
सिंहल द्वीपी महानील अति कान्तिमय
देशान्तर के प्रोज्वल हीरक दिव्य द्युति
विविध वर्ण बहुमूल्य हिमालय मञ्जु मणि ।
इन रत्नों की मीनाकारी मुग्धकर
चित्रित चारों ओर भित्ति पर, स्तम्भ पर ।
छत की सुन्दर शिल्पकला कौतुकमयी
स्फटिक शिला पर नीचे द्योतित हो रही ।
छत में द्योतित होती गच-रचना रुचिर
छत गच की कृतियों मे अन्तर कठिनतर ।
चतुष्खम्भ कोनों मे तरुवर पुञ्ज से
ललित लताएँ मणियों की जिन पर खचित
रत्नों के प्रसून बहुबर्णी प्रस्फुटित
हेममयी कल कलियाँ विकसित हो रहीं ।

प्रतिभासित लावण्यमयी छवि स्फटिक पर
पारिजात पादप का स्मरण दिला रही।
मणिमय मञ्जु फलों के गुच्छे प्रतिफलित।
सुन्दर सुन्दर शकुनि मनोहर रत्नमय
प्रतिबिम्बित थे—फल आस्वादन ले रहे।
विविध भाँति के दृश्य मनोरम प्रकृति के
रत्न रचित थे धवल उपल दीवाल पर।
कार्मिक कल कालीन बिछे थे फर्श पर,
चित्रित थे व्यवधान विविध बहुमूल्य के,
काश्मीर अति अरुण शाल आसन रुचिर,
ज़रदोज़ी रूमी मखमल मृदु कुसुम सी,
कान्त कलित चिक्कण शुचि रेशम चीन का,
सूर्मि-भित्ति-छततल के सुन्दर आवरण।
एक लाख का अस्पकदलबादल ललित
तना अहमदाबादी यहाँ बितान था।
रजत छड़ों का बाहर था प्राचीर वर
सज्जित था 'दीवान आम' सब भाँति यह।
कल्पनामय सय-महल के मध्य अवसित
रत्न रूपित चित्रशाला भित्ति सन्निधि
आमंजु अंतर्वास में आसन्द वर—

दुग्धग्रावा रचित भासुरमणिप्रकाशित।
वहाँ 'तख्तताऊस' सुरासन सा विराट
आलोकित भावित्र - विभूषण मञ्जिमा
रत्नाकर के तार तारकित कर रहे।
(जो रति के कर्णावतंस के योग्य थे)
जगमगाते रत्नगर्भा रत्नतल्लज
(आभूषित कर सकते दिनमणि-मेखला)
स्वर्णिम मञ्च मनोज्ञ मयूरासन वहाँ
करता था अवकीर्ण चतुर्दिक रश्मिया।
मणिमण्डित मण्डप की छत आभामयी
बारह खम्भे मरकत के जिसमें लगे।
छत-तल की थी मीनाकारी मोहिनी,
वल्गु मोतियों की तोरण में झालरें
मण्डप पर दो मोर मनोहर मणि रचित
शुचि रुचि के बहुवर्णी मेचक चमकते
जिनके थे कल्माष कंठ कल्मषहरण
रञ्जनकारी सत्य समन्वय रत्न का
दिव्यासन हित वे स्वर्गिक वाहन युगल।
मणि मोरों के मध्य अलौकिक एक द्रुम
विद्रुम-मूल अमूल्य काण्ड वैदूर्य्य के

गोमेदों की शाखा गोनस-टहनियाँ
सौगन्धिक-किसलय पल्लव हरिताश्म के
हीरक मोती लाल नील मणि के सुमन
कुरुविन्दों की केसर थी जिनमें कलित,
रत्नों की आभा ही पुष्प पराग वर
सर्वफलप्रद कल्पतरु सा फल रहित यह ४३३
दोषा के दोषों को धोता सर्वदा.
चिर बसन्त था अद्वितीय तरु के लिये।
(सिंहासन अवलोकन करने स्वर्ग से
पारिजात पर उतरी तारा मण्डली)
पीठासन हित रत्नजटित ग्यारह फलक
मञ्चारोहण को भ्राजक सोपान शुचि
तीन ओर था स्वर्ण शलाका आवरण।
रजनी में धोता सिंहासन चन्द्रमणि
तथा दिवस में भास्वतमणिनि:सृत प्रभा।
मणियों की आभा का वर सुरचाप तन
मंगल मञ्चारूढ़ महीपति मुकुटधर
कोहनूर हीरे की उज्ज्वल ज्योति से
मुखश्री द्विगुणित कर देता था जिस घड़ी
शाहजहाँ शोभित इन्द्रक में इन्द्र से

शाहमहल दीवान आम से सुभग तर
अनुपम था जग में अपने सौन्दर्य्य मे
मदन महल का भी मदगञ्जन कर रहा।
अनुरञ्जित करती थी अभिरञ्जित प्रभा
कवितामय 'दीवान खास' ऐश्वर्य की
पारदर्शक गच सितोपल परम सुन्दर ४२८
नाना भाँति प्रवाल मञ्जु मणि आभरित
फर्श और दीवाल संधियाँ भवन की
अङ्कित जिन पर पल्लवमुकुलप्रसूनचय
उल्लिखिता थी हेममयी अवहालिका।
चम चम चम चम रजत छदिस की सित छटा
प्रभा-पुञ्ज से जगमग होता हर्म्य वर।
बहती थी 'नहरे बहिश्त' मृदु मध्य में।
विमल सलिल में बिल्लौरी मछली ललित
बीच बीच में यत्र तत्र कृत्रिम कमल
पुण्डरीक इन्दीवर मञ्जुल कोकनद
आकर्षित करते थे लोचन-भृङ्ग को।
अविरल धारासार कहीं पर सहस्रधा
वितरित करते परिमल इत्र गुलाब की।
मोहमयी मादक थी मृगमद की महक,

तन्द्राकारी तीव्रामोदी केवड़ा
केसर के सौरभ से विह्वल इन्द्रियाँ
शिथिल चेतना करती शीतल खस-सुरभि
भीनी भीनी हिना भेदती प्राण को
बेला चम्पा जुही चमेली मल्लिका
मृदु सुगन्ध से वासित करण करण सदन का।
दर्पण करते चूर दर्प लावण्य का।
एक रन्ध्र में वहकर आता उष्ण जल
कम करता था सर्दी के अति शैत्य को,
अपर रन्ध्र से वहता था शीतल सलिल
हरता था प्रज्वलित ग्रीष्म के ताप को।
झाड़ और फानूस प्रभा रञ्जित किरण
नाच रही थीं नीचे निर्मल नहर में।
जाल जड़ित रंगीन काच से ज्योति जब
सित कमलों को रंगती अपने रंग से
नीलोत्पल रक्तोत्पल बन जाते ललित।
सुरधनु रञ्जित कमल पँखुरियों की प्रभा
कल्पनामय थी अलौकिक और अनुपम।
कमल दल पर सलिल-सीकर की छटा
मरकत की थाली में मुक्ताफल विमल

थिरक थिरक कर बन जाता संगीतमय।
आनन्दो विलास के लीलाधाम में
अलंकार परिधान पहन कर राजसी
रूपवती मुमताज सुन्दरी संग में
अंग-अंग में अंगराग आमोदमय
आती थीं नहरे बहिश्त के पुलिन पर
जल विहार करती ललनाएँ हूर सी—
(परिस्तान की परी. अप्सरा स्वर्ग की)
विचरण करता हुआ हयातोद्यान में
गन्धवाह लेकर मधु गन्ध गुलाब की
आलोलित करता था अलक–प्रसून को।
सुरधनु के सतरंगी रम्य वितान में
चिर बसन्त का फल्गूत्सव आह्लाद कर
मदन-मदन में होता था उत्कर्ष में।
उत्तोरण उत्कीर्ण वचन यह सत्य है
"यहीं-यहीं है-यहीं स्वर्ग भूलोक का।"
अहा निकट ही सावन-भादों चारुता
सदा दिवाली जहा जगमगाती रही
प्रभा-पुञ्ज का कुंज बना जलजाल से
सुदर इरंमद को चिर रूप अनूप दे।

लुटा सौख्य दीवान-आम का आज वह
खोकर सकल विभूति दैन्य का दास है।
शाहमहल जीवन विहीन कङ्काल सा
वह आमोद प्रमोद कहाँ! क विलासिता?
दोनों ही प्रासाद रंक के उटज से।
गोलम्बर है मौन बिना संगीत के,
कोने मे लूता के जाले झूलते,
खेल रही आखेट लक्किका भित्तिपर,
पारावत वलभीमें शोकाकुल महा
शाहजहाँ का पुद्गल मानो रो रहा,
"कहाँ तख्तताऊस कहाँ वह महल हैं?'
इन विभूतियों की विध्वंस-विभीषिका
व्यञ्जित करती वल्गुलोक की फल्गुता।
दिल्ली क्या? मीलों का कबरिस्तान है
बीच बीच में सूनी खण्डित मसजिदें
सूनी है दरगाह जर्जरित चतुर्दिक,
जीर्ण शीर्ण मकबरे कहीं सूने खड़े,
हा गुम्बद का फूटा कहीं कपाल है,
कहीं शेष मीनार झुकाये सिर खड़ी,
कहीं कंगूरा टूट भूमि पर आ गिरा,

कहीं कलश का हुआ अगोचर हो गला,
दीवालों का कहीं दिवाला हो गया,
कहीं भग्न छत विवश धराशायी हुई,
कमर छिन्न हो गई कहीं महराव की,
खँडहर यह अपने ही दुख से मौन है।
क़तलआम आ किया यहाँ पर काल ने ५०८
नर की ही तू कब्र न, घर की भी बनी।
ऐ अन्तक के अतिथि! पड़े बेहोश क्यों
तज जग का आराम अन्ध भूगर्भ में?
जी देकर क्या पाया तुमने कब्र में?
कुछ बतलाओ सौदा क्यों मँहगा किया?
अहमद हामिद कौन? कौन कैकूब है?
सादुल्ला अबदुल्ला आदिल कौन है?
कविता में अति कुशल सूझ के जो धनी
इंशा गालिब ज़ौक कौन उस्ताद हैं
कौन दिलावरजंग? कौन कल्लन मियां?
कटसी में है साम्यवाद फैला हुआ
कहाँ ज़हूरन और कहाँ ज़ेबुन्निसां?
लोकप्रिय प्रिय एषणाएँ अति सिकुड़ कर
आ बैठीं चिर शान्तिनिकेत-समाधि में!

ताज और तुम्बी सोते हैं साथ ही।
हे घटकर्पर ? यवन राज्य से क्यों पड़े ?
खो बैठे क्या थोड़ा सा वह शून्य भी
इस चिन्ता से टुकड़े टुकड़े हो गये,
रञ्जित तेरे चित्रण धुंधले हो गये
श्रीहत शासक हो जाता ज्यों पदच्युत। ५२८
खेल चुके हो किस कुल के रनिवास में,
झेल चुके हो क्या क्या जग आपत्तियाँ,
किस रमणी के कोमल कर को छू चुके,
किस बालक के तुम विनोद भाजन बने,
किस मतवाले मद्यप के तुम मुँह लगे,
किस अबोध के हाथों से दुर्गति हुई,
रंक-पर्णशाला के या तुम कोप हो,
या हो भिक्षा पात्र किसी प्रभु-भक्त के,
किस दिल्ली के बासी क्या इतिहास है ?
आकृतियाँ किस युग की अंकित हो रहीं ?
कलित कला द्योतक है यह किस काल की ?
खर्पर ! तेरे यह मानव सब मौन हैं।
बोल रही है लेकिन मुखभावावली
आनन ही सच्चा दर्पण है हृदय का।

मानव-मुख में टपक रही संवेदना,
महिला का चिर प्रेम लोक आधार सा,
सरल प्रकृति विहँसत बालक यह खेलता
उसे न चिन्ता तेरी-मेरी-जगत की,
इस पार्थिव का अपना ही संसार है।
घर कर पाई अभी न उसमें एषणा, ५४३
अभी मुक्त है षड्-रिपुओं के जाल से,
शिशुता का भोलापन भूला वदन पर।
चिन्ता उसे न सैयद मुगल पठान की
मृत नृप गण की या विनष्ट साम्राज्य की।
खो बैठा यह खर्पर अपनी पात्रता
खण्ड खण्ड हो गये मुगलिया राज्य से
लोप उसी विध होता जाता भूमि से।
ऋत् सत् दोनों एक प्रकृति के रूप हैं,
पञ्चतत्व की रचना होती सत्य से
तत्वमयी संसृति का सकल विधान यह
ऋत हो जाता विभु के प्रलय प्रवाह से,
अणु अणु तेरा भी अब ऋत् की ओर अह!
चल कर देखो नर-कपाल वह सामने
बतला दे शायद इतिवृत्त अतीत का।

सृजन यही करता है सुन्दर स्वर्ग का,
इसमें अंतर्निहित सकल विद्या कला,
स्वप्नों का यह सुन्दर लीलाधाम है,
भव्य भावनाओं का भावन भवन है,
यह विचारधारा का उद्गम रम्य है,
क्रीडन कर्ता इसी क्षेत्र में कल्पना ४६
निर्मित करती अभिनव अद्भुत रूप को
अनुपम चित्रालय में अपने सर्वदा।
प्रतिभा के झूला करते हैं पालने
जिनसे नित झरते हैं सुम-साहित्य के
भर देती है पँखुरी जिसकी मोद से
कर देती है मंगलमय संसार को।
दोनों सखियों के सुन्दर सहयोग से
पल पल नव नव फिल्म सिनीमा की यहाँ
प्रस्तुत होती वर्ण वर्ण के रूप से
दृश्यमान होते हैं दृश्य अदृश्य सब।
भाव निर्झरों का गिरि त्रिगुणी केन्द्र है।
समराङ्गण बन जाता जब षड् शत्रु का
नरकपाल ही नरकपाल का रूप है।
भूत शयन करता इस भावी-महल में।

पहले अपबीती फिर जगबीती कहो,
रेखा लेखा देखा तुमने शुभ अशुभ
अनल-दाह से भस्म हुआ लावण्य क्या ?
कृमि-कीटों का खाद्य बना या कब्र में ?
मानव हो ? दानव हो ? कुछ परिचय कहो
नृप हो क्या मर्य्यादा रक्खी धर्म की ?
अकबर से क्या नीति कुशल नरपाल थे ?
बीतराग थे क्या नासिरुद्दीन से ?
न्यायशील थे जहाँगीर अवनीन्द्र से ?
या थे भोगी भूप मुबारकशाह से,
सरल प्रकृति या आलम अम्बक हीन से,
या विजयी काफूर तुल्य थे समर में,
अधमशाह से अधम कुचक्रों में रहे,
या कुलद्रोही वीर महावत से रहे,
मर्य्यादा-ध्वंसक अभिमानी मान से,
या वर सैनिक सदृश समर में खेल कर
या हत्यारे हाथों में पड़ हत हुए,
काल देव को अर्पण किया कपाल है।
भोग चुके क्या वैभव हिन्दू काल का,
सहन किया यवनों का अत्याचार या,

कीर्ति कौमुदी फैलाई किस वंश की ?
किस नृप कुल को किया कलंकित जन्म से ?
षडयन्त्रों के बने स्वयं आखेट क्या ?
या हो कोई रत्न मुगल दरबार के।
विज्ञ बीरबल से विदग्ध क्या व्यंग में ?
या फैजी के तुल्य तीव्र थे तर्क में,
अबुलफज़ल से दक्ष रहे इतिहास में ?
मुल्ला दो प्याजे से क्या तेरी ठनी ?
वीर मराठे नृपति पेशवा अग्रणी
मुगलों पर छाया जिसका आतंक था ?
या जाटो के संग रहे तुम लूट मे ?
या बलवाई सत्तावन के गदर के ?
या विदेश के लाल यहाँ आ लुट गये ?
या हो कवि-कपाल जो तारे तोड़कर
ग्रंथन करते माला दिव्य प्रसून की
पहना देते वाणी के कल कंठ में।
कभी हवाई महल बनाकर गगन मे
सांध्यराग से पुतवा कर मंजुल विमल
नूतन नूतन कौतुक रचती कल्पना
और कुतुहल होता था आह्लादमय।

लाद लाद भावों को या भवपोत में
मानस मानस में पहुँचाते थे सदा।
नवरस की निर्झरिणी या तुमने वहा
सींची कविता-लता काव्य-उद्यान में.
खिल जाते थे सुमन भावुकों के तुरत
मनोवेग द्विज झांक झांक छिपते जहां
जिनके कलरव में मिलता आनन्द फल।
जोगी के खप्पर ! क्या वह रमता बना
जो तुझको रखता था हरदम हाथ में।
या तुमही उस जंगम के सिरमौर हो
मंत्रों से जो सदा सिद्धि-साधक रहा।
इस थाती को त्याग चला किसके लिये ?
अपने पर भी क्या न उसे अपनत्व था।
इनसे हो या इनमें से ही एक हो ?
बोली कुछ भी आह ! न अंधी खोपड़ी
अपनी चुप से ठुकरा दीं सब भावना
किया न हलका दिल दो बातें पूछ कर।
तेरा वैभव लुटा मौनियों के नगर !
लाल महल की रही न मणिमय लालिमा।
शाह बुर्ज सोने का शोभा हीन है।

दया रहित दिल सा यह निर्जल द्रोणि है,
नीलम-श्री खो नीली छतरी खिन्न है.
सब्ज पोश की सब्जी चरती काल ने,
सुषमा चंपत हुई भग्न मन भवन है.
सूनापन चुपचाप यहां पर आ छिपा।
परिमल से प्रक्षालन कर निज अंग को
अंगराग लेपन कर पुष्प-पराग का
अनिल कलेवर पद पद पर था कांपता
जिस शोभा सम्पन्न सदन के सामने।
किरणें भी मरकत गवाक्ष से झांक कर
सहम सकुच रह जातीं बाहर महल के।
जहाँ विहरते थे महीप महिषी लिये
जहां राज परिवार मनाते पर्व थे
इन रनिवासों में विलासिता - धाम से
दुष्प्रवृत्तियां सी बरें महराब में
भर्रा कर आगंतुक के सिर टूटतीं।
अंजनहारी बुरी भावना सी निरत
कोने कोने बना रही अपना निलय।
लिप्सा सा मकड़ी का यह जाला तना
फंसी हुई उसमें कुछ भोली मक्खियां

जीवन की अंतिम घड़ियां वे गिन रही।
लोभ सदृश यह अष्टपदी मकड़ा इधर
नाप रहा वामन सा सत्वर भित्ति को।
माया सी फैली जो भीतर कालिमा
घनीभूत करते चिमगादर मोह से।
जहां तहां मच्छर दल गाता पिशुन सा
बेसुध होते ही श्रोता को डस लिया।
दूषित छत हो रही विहंगम-बीट से
मन हो मैला यथा द्वेष के दोष से।
सारमेय-विष्टा से गच गन्दी हुई
पाप-कलुषता के कुत्सित परिणाम सी।
कब्रों के सोने वालो ! जागो उठो
देखो मिथ्या शान विनश्वर जगत की।
जिस पर तुमको गर्व न प्यारा तन रहा,
जिस पर था अभिमान न वह वैभव रहा।
अय जीवित संसार ! देख तू आंख से
महलों के वासी कब्रों में जा बसे।
नूतन नगर बसाया क्या भूगर्भ में ?
मत्सरता सोती है निश्चित महल में।
अरे कब्र में क्या है देखो ध्यान से

अभिलाषा-अर्थी पर आशा-कफन मे
मृतक एषणा का लिपटा जर्जरितशव।
कहो क़यामत से पहले ही चल बसे
दुनिया मिथ्या—एक कहानी जान कर
या दुरितों को मुँह दिखलाने से डरे
या समझे प्रिय कब्र स्वर्ग का द्वार है। ६८८
अतः इसी से नाता जोड़ा अन्त मे
दुनिया को—प्राणों का बदले मे दिया
इन प्यारी कब्रों के वासी हैं कहां?
समझा था चिरकाल रहेंगे मौज से
गये मकबरों के मालिक मुँह मोड़कर।
दरगाहो मे ज़्यारत की हलचल नहीं,
आज मसजिदों से अज़ान आती नहीं,
ईदगाह सूने है, ईद न जश्न है।
जलते थे घी के चिराग जिस महल मे
आज वहां पर अंधकार-अधिकार है।
सच है वह चिराग दहली का बुझ गया
आलोकित करता था जो नित नगर को।
मौनी मावस छाई है अब चतुर्दिक
रम्य चित्रपट हुआ तिरोहित तिमिर में। ६९४

तृतीय प्रवेश

आंगिल काल

नई दहली

(रायसीना)

नव दहली नव दुलहिन सी
भूरि उमंगों से भूषित
नव आशा - अभिलाषा ले
भावी भव्य रूप - रेखा
लुभा रही जन के मन को।

३

तारों ने गगन मे महोत्सव मनाया था।
रात मे बखेरे हुए राकापति-कर से
मोतियों को बीनती हैं किरण-कुमारियाँ
पुष्प चुनती हैं हँस हँस उपवन से
माली की सुताएँ मानो राजपुत्र माला को
शिला को उठाती जैसे कृषीवल-कन्याएँ
सातों बहनें ले जाती हैं उन्हें सावधानी से
संकलन करती हैं सब पितृ-गेह में
उस सम्पदा को सूर्य सर्वदा लुटाते हैं।

× × ×

रवि-दीप रख उषा देवी व्योम-थाली मे
आरती उतारती है गाती विहगावली
कल कल कंठ से प्रभाती रायसीना में

नहीं नहीं भूल हुई कहाँ राय सीना है।
जहाँ बैठ चार जने बड़े भाव भाव से
चित्त बहलाते मित्र नित्य ही चौपाल में
सुनते सुनाते बात निज निज घर की
और किसी वृक्ष तले बाल-वृन्द खेलते
खेल थे ग्रामीण सब आडम्बर-हीन थे
सरल स्वभाव वाली जहाँ ग्राम-नारियाँ
जगत जगाती थीं सवेरे उठ कुए की
दिल खोल खोल बातें कहतीं थीं दिल की
खोलतीं थीं भेद ग्राम-घर-परिवार का
पल्लवों मे पंछियों की मधुर किलोल सी
चरते थे घास पशु पास चरभूमि मे
भरते अरण्य में चमरू चारु चौकड़ी
ऐसा था सरल जीना तब राय सीना था।

× × ×

बिखरी ब्रितानियाँ की विपुल विभूति है
नई दहली है यह नहीं रायसीना है
होड़ करती है अब गांधर्वनगरी से
तितली के तुल्य भूल गई पूर्व कथा को
जहाँ घास फूस वाला कभी रायसीना था

(कहाँ वे उटज और कहाँ पर्ण-शाला वे ?)
वहाँ नई दहली की उच्च चन्द्रशाला है
चाकचक्य देखकर चक्षु चौंधियाते हैं।
दोनों कर्णों से खड़े हो इस उपवन में
भरते फुआरे नित्य गोद मखमल की.
चुगते हैं मुक्तामणि सुमन मराल से
मन बैठ उन पर तैरता है विधि सा।
पावक-पवन पर प्रचुर प्रभुत्व है।
काम सब होते यहाँ बिजली के बल से
मन्द पड़ जाता चन्द दामिनी की द्युति से
भ्रम होता देख छटा रात है कि दिन है ?
अन्य ग्रहवासी लख वल्व विभावरी मे
समझते होंगे अहो ! उलटा आकाश है
किंवा द्यौलोक का यह द्वितीय पटल है।
जहां भारी भीड़ दर्शकों की हम देखते हैं
चल वहाँ देखें कैसी चहल पहल है,
विधि-त्रास तुल्य यह भवन विशाल है
परिषद बैठती है इस गोल घर मे,
नीति के निधान शुक्र चतुर चाणक्य से
करते निर्णय यहाँ भारत के भाग्य का

तथा हल होती सब कठिन समस्याएँ
भारी राजशक्तियों का यहाँ एक केन्द्र है।
सुषमा-संपन्न इस सुन्दर सदन में
भारत के भूप मिल करते हैं मंत्रणा।
सचिव-सदन यह सुन्दर प्रणाली का
करते अमात्य काम विविध विभाग में
सिर लिया भार गुरुतर इस देश का।
नई दहली को देखा वर्तुल मीनार से
यत्र तत्र देखते हैं करामात कल की।
पत्थरों की बुरी दशा इस कारखाने में
जग में कठोरता का दंड विकराल है।
कोई कल व्योम चढ़ फेंकती शिलाओं को
कोई चीरती है और कोई चिकनाती है।
छन छन छेनी चलती है सिर किसी के
भांय भांय सांय सांय सुनते हैं चीख़ सी,
फ्रांस-राजविप्लव का मानो क्रूर कांड है
गदर मचा है या दुबारा सत्तावन का
गिरते हैं खंड खंड कैसी मार काट है।
कहीं न पहुँच और कहीं न अपील है।
आहत पुरुष जैसे पानी पानी मांगता

पानी की बौछार सदा करती मशीन है।
तेरा है रुदन यह उपल! अरण्य का
सुनेगा न कोई तेरी तुझसे कठोर हैं।
आगे चल देखते हैं शिल्पी चतुर यहाँ
करते उत्कीर्ण सब चित्र भांति भांति के
दिखलाते पत्र-पुष्प विज्ञ बाजीगर से
जान डालने की पशु-पक्षी में कसर है।
दीखता है ऐसा मोर उड़ना ही चाहता।
बड़े ठाटबाट की है कोठी बड़े लाट की
प्रतिनिधि लाट यहां राज-राजेश्वर के
भारत की बाग डोर इनके ही हाथ में।
अन्य नरपतियों के महल निराले हैं।
चतुर चितेरे की मनोज्ञ चित्रशाला में
करता विहार कांत कौशल कला का है,
पूर्व महापुरुषों के चिर सतसंग सा
देता है आमोद बहु सूक्तियां-मुकुल से,
सार सर्व धर्म का, हिन्दुत्व के प्रतीक सा,
बिरला के मन्दिर सा बिरला ही देखा है।
मोह रहा दिव्य द्वार दहली नगर का।
बात दो खटकती है बार बार दिल में

एक तो विदेशीपन भेष-भाषा-भूषा में
दूसरे अभाव यहां राज-राजेश्वर का
दिल्लीपति बिना यह सूनी राजधानी है।

× × ×

भूल जाओ इन्द्रप्रस्थ चाहे इन्द्रलोक सा
सपना सी दीखे चाहे प्रभुता पिथौरा की
याद रहे राज-श्री न श्रीनगरी की भले
तुगलकाबाद का न तेज रहे ध्यान में
सुभग फिरोजाबाद विस्मृत होवे भले
जितनी बसी है दिल्ली आगे और बसेगी
अलकापुरी सी रम्य भव्य भोगवती सी
अष्ट सिद्धि हिन्दुओं की, ऐश्वर्य पठानों का
मुगल महत्ता और महिमा मराठों की,
भूल जाओ सब कुछ, यह मत भूलना—
उसके हाथ दुनियाँ जिसके हाथ दिल्ली।
दिल्ली-रंगमंच पर हिन्द-नाट्यशाला में
आर्य-अफगान खेले बारी बारी अपनी,
मुगल मराठे खेले बड़ी धूमधाम से
अभी अंगरेज खेल चुके रंगशाला में।
अभिनेता मंच पर खेलते स्वदेश के

आती है क्षितिज में झलक कृतयुग की
दे रहा संदेश शुभ नान्दी रामराज्य का।
काल के पर्दे के पीछे भविष्य-नेपथ्य में
सजते हैं कौन पात्र अभिनय होगा क्या ?
जानना दुरूह "विभु" विधि सूत्रधार है। ११५

चतुर्थ प्रवेश

भावना काल

खंडहर !!!

देखा प्रभात चल बसे नक्षत्र सांझ के,
मुर्झा गिरे ज़मीन पर वह फूल बाग के.
वीरान हो गया हा! बुलबुल का यह चमन
जिस पर कभी सुरेंद्र का नन्दन निसार था।
कितनी न हाय! दिल्लियां बस बस उजड़ गईं
उठ उठ पयोधि-वीचि सी बढ़ बढ़ विला गईं।
स्वाहा हुईं समृद्धियां द्वेषाग्नि से झुलस
दिल्ली-चिता-प्रसून से यह खंडहर पड़े।
रोते अधीर मीर इस 'उजड़े दयार' को
जमुना बिलख रही विकल सूने कछार में।

४

व्योम-बेर लाई यह शबरी सी शर्वरी
टेर टेर कहती है बेर घनश्याम ! लो
'घनश्याम' गूंजती है ध्वनि इन्द्रप्रस्थ में
घनश्याम ! घनश्याम ! पल्लव-पवन में
श्याम ! श्याम ! सलिल में, कंदुरा-कछार में
'म' 'म' कह मौन हुई मूकध्वंसजाल में
अंध-अंतराल-अंत-शून्य के विवर में
लेती है बसेरा हो निराश निरुत्तर से।
हृदय विदीर्ण हुआ खंड खंड शतधा
भावनाएँ भग्न हुई ध्वंसों के कुभार से
शासन अनेक जैसे लुप्त इन ढूहों में।
दिल्लियों का मरघट आज इन्द्रप्रस्थ है।
शत शत भूप राजधानी रजधानी हा !

सती हो गई हैं यहाँ कितनी न आशाएँ,
इच्छाओं का जौहर हुआ है इसी क्षेत्र में,
कब्र कामनाओं की, उमंगो की बनी है हा।
भाल यहाँ फूटा है अभागे भोग - भूप का।
शान लुटी, मान मिटा, आन गई भूत की,
भस्म अतीत की मिली है रज रेणुका में।
इन नग्न कब्रों पर भग्न प्रासाद बलि
हो रहे है नित्यप्रति खंड खंड क्रमशः।
लुट गया जाते जाते शक्तियों का कारवाँ
वीरता ने जान दी भटक इस मरु मे।
यश की उड़ी है खाक इस खंडहर में,
रूप-राशि लुटी यहाँ महि-फिरदौस की,
बिखरा पड़ा है द्रव्य 'उजड़े दयार' का
भीषण भूडोल मानो अभी अभी डोला है,
अथवा कुकृत्य ज्वालामुखी के विस्फोट का।
गौरव हुआ है बलिदान इन खण्डों मे
पतझड़-पल्लवों से गुण झर गये हैं,
बिखरी पंखुरियाँ हैं सौन्दर्य-सुमन की।
आज पाण्डुपुत्रों का न अभिज्ञान शेष है
हा न रायपिथौरा का ध्वंसावशेष कोई।

बोल चुका बोल बाला तुर्क इकबाल का.
गुज़रा यहाँ से अभी जनाज़ा पठानों का.
मुगलों के वैभव का निकला दिवाला है।
खड़े खड़े करते थे बातें जो मयंक से
लोट रहे महि पर महल महीपों के।
उठ चुकी अर्थी आह! सकल कलाओं की.
'राम राम सत्य' यहाँ हुआ है प्रभुत्व का।
शाहजहानाबाद विदित जहान मे था
जिसका न सानी कोई दुनिया मे दूसरा।
चाँदी के थे चौक जिस चाँदनी बाज़ार के
राजपथ रजत के धूप-चन्द्रातप मे
राजते थे दिनरात शुभ्र छायापथ से
अन्तर्हित अहे! वह शोभा इन्द्रधनुसी।
शिखी-सिंहासन-शोभा सतत सुहाती थी
जिससे थी दिव्य छटा कोहनूर हीरे की.
आज हा दीवान आम दीखता दीवानासा।
'नहरेबहिश्त' जिस धाम को धोती रही
वह दीवान-खास आज हा! उदास है।
पड़ी पड़ी सोच रहीं धराशायी गुम्बजें.
चिर मौन हो रहे हैं सदन संगीत के.

भू पालों के स्वप्न-स्वर्ग हन्त ? विध्वंस हुए ।
चक्रवर्ती चूर काल-चक्र की चपेटों से—
यम-चक्कियों ने पीस डाले सिद्ध औलिये.
धूल हो बवंडर में भ्रमते हैं लापता
कहाँ ताज छत्र कहाँ माला कहाँ नूमड़ी ?
जग-वस्तुओं का मूल्य ?-मिथ्या अभिमान है।
श्रोत में न श्रुतियों की सुधा अब आती है,
दिव्य इन्द्रप्रस्थ की कहानी बस शेष है ।
कृष्णा बन तृष्णा आई लालसा का चीर ले
उसमें उलझ प्राण कौरवों ने खो दिये,
वही काम आया अन्य वीरों के कफ़न में ।
मनहूस अँधेरे ने निगला प्रकाश को
मधुर संगीत जहाँ उल्लू वहाँ रोते हैं,
खंडहर हिंसकों से दौड़ते हैं खाने को ।
पूछो इन ध्वंसों से हा ! इन - इन ध्वंसों से
एक एक रोड़े में अनेक इतिहास हैं ।
जो विशाल राज राज - राजों ने लुटा दिये
खोज नहीं पाया कहीं इस खंडहर में ।
मंदिरों की बलि, कुरबानी मसज़िदों की,
शिला शिला कण कण अणु अणु प्यारा है।

तीर्थ तुल्य पावन यह धूल रामरज सी
हिन्दुओं की वाराणसी मक्का मुसलिम की।
युगल संस्कृतियों का संगम पवित्र हो !
लुप्त हुआ भूतल से गुप्त सरस्वती सा ;
सूने हैं समाधि-सौध विस्मृत विहार से
आठ आठ आँसू भग्न मीनारें बहा रहीं ।
औलियों की दरगाहें ?—धूल बस शेष है ,
तोरण न तोरण न मंगल कलश है।
बरस रही है नित्य अशुभ अभद्रता
ध्वंसों के भी अंश कुछ दिन के अतिथि हैं ,
निज निज लोचनों से देखा रविचन्द्र ने
सतत विहार यहाँ किया है समीर ने
साखी दे रही है यह अर्बुद की चोटियाँ
साखी है कलिन्दसुता खेली गली गली जो
साखी है गोपाल साखी दाता ज्ञानगीता का
पूछता है कोई क्यों न इन भग्न कब्रों से
मीलों तक फैला यह सारा खण्डहर है
मीलों-मीलों-मीलों तक यही खण्डहर है
देखते जिधर इस अर्बुद की चोटी से
शोभा महाभाग्य के सो रहे सभर ।

ऐसे ही पड़े हैं खंडहर दिल्ली दिल्ली के
कुरुक्षेत्र दूसरा अभी अभी हुआ मानो।
जातियों के ध्वंस अह! इसी-इसी भूमि में—
चक्रवर्ती साम्राज्यों के यही दूह - व्यूह हैं ?
खंडित अखंड राष्ट्र इन्हीं-इन्हीं खण्डों में—
आह! जय-विजय के यही खंडहर क्या ?
सत्यानाश! सर्वनाश! काल रात्रि! काल है! १०८
सारी दिल्लियों के अह! अतुल ऐश्वर्य का
इतना ही अन्त हन्त! मुट्ठीभर राख है।
सो चुके हैं स्वप्न इस धूल में बहिश्त के,
रो चुके हैं जन्मभर दैवदुर्विपाक को
धो चुके हैं हाथ निज धन और धाम से,
खो चुके हैं सब कुछ इस खंडहर में! १०६

पञ्चम प्रवेश

स्वप्न काल

वैजयंत !

समय सेरहा है परिवर्तन
परिवर्तन संभूतावर्तन
आवर्तन में विन्दु उभय हैं
उच्च निम्न गति नियति-चक्र में
होती रहती बारी बारी
इसी भांति होता रहता है
देश-जाति-उत्थान-पतन यह
स्वप्नों का संसार निराला
मृगतृष्णा सा, सुधासिंधु सा।

५

तेजपुंज आनंद
मनमौजी जीव एक
मुक्त मानव सा
पुष्पक आसीन हो विचरता हुआ
आलोकमय लोकों में
पहुँचा छायापथ मे
जहां स्वर्ण पुंडरीक प्रभा छिटराते हैं
परागसी।
उसी के पुलिन पर
सुनहला संसार सा
बना रहा है स्वर्ण युग
स्वर्ण जयंती नित।
हर्ष हिलोरें लेता

उमड़ती उमंग हैं
मोद मौज ले रहा है गोद में विनोद की
सुख झूलता है आशीर्वाद के हिंडोले में।
कंचन कलश
रत्न खचित द्वार विद्रुम के
झलमल होते मेरुज्योति से
तोरण सुरचाप के
चमकते चारु चांदनी में।
खेलती दिवाली नित्य
होली
प्रकाश के अबीर में।
चिर वसंत
चिर कुसुमोत्सव
ऋतुओं का विभ्रम।
सुरभि खेलती है प्रात
शेफाली सुमन से।
पल्लवों का लास,
किसलय विलास।
मुकुल स्मित हास,
सुमन उल्लास,

परिमल उपहार
वितरण हो रहा है
लोक लोक आलोक सा।
संतत संगीत ध्वनि
मधुर मृदुल
चन्द्रशाला—गुम्बदों में गूँजती।
लोक एक सूत्रता में
चिर सूत्रता में
विश्व की विचित्रता सा।
ध्येय एक—
सनातन सभ्यता।
एक ही विधेय है—
पुरातन संस्कृति।
समता, सहानुभूति.
सब में आत्मीयता।
त्याग परमार्थ और सच्चा तप जन-सेवा
राष्ट्र लोकतंत्रता में।
सम्पूर्ण स्वतंत्रता से
अग्रसर होगा सुराज्य श्रेय-पथ में
पूर्ण राम-राज्य सा

अनूप राजधानी में
बजती वंशी चैन की
न्याय दुंदुभी की होती आठोयाम घोषणा।
कासार में
कोकावेली करती किलोल कल्लोल से।
मरकत थालियों में भर भर मुक्ताफल
लुटाते मुक्तहस्त से
कमल सरोवर में।
मन्दाकिनी कल गान।
नौका-विहार का आनंद ले रहा
आनंद अब।
जल-वल्लरी पर
बुलबुले कुसुम से,
ताम्रवर्णी मीन किसलय सी
पवनांदोलित पल्लवों सी
चंचल।
रूपहले सलिल को
मीन रंग रंग की
रंग देती प्रियदर्शी।
चंचल स्फटिक पर चल मीनाकारी मंजु

बदलती पल पल
सतत परिवर्तन
अमर मीनाकारी यह
अनंत तक ।
तरु मंदार से ।
झरता फलों से मधु ।
मंजरी से परिमल
लाद लाद महागति
चलता मंद गति से ।
पारिजात पादप पर
नन्दन विहंग वर
मलय रंग, वलय से युक्त
पुच्छ पुच्छल तारे सी चमकती
धरातलशायी सिरा
चमक चमक उड़ती
पुर-वैजयंतियां सी
बैठते मीनार के कंगूरों पर
जब जब
चपल विद्युत के गगन में
इरंमद सी एक क्षण ।

नूतन इन्द्रप्रस्थ वैजयंत सा।
सृजन हो रहा है चक्रवर्ती प्रेमराज के करों में
स्वर्ण के प्रभात सा।
ऊषा महारानी की
रागमयी चित्रपटी खींची बालखिल्योंने।
अरुण ने सप्त-हय-रथ रोका।
दिनपति देखने को आये साज सज्या को।
जाकर बतायेंगे निज तनया को सब
स्वर्ण के प्रभात में
स्वर्ग के प्रासाद में
देख रहा सुख-स्वप्न
आनंद विचित्र यह
ले रहा है स्वप्न-सुख अभिनव इन्द्रप्रस्थ में।

संकेत

पृष्ठ २० पंक्ति १४ **इनका** (Inca)—दक्षिणी अमरीका के पीरु देश के मूल निवासी। स्पेन वालों के विजय से पहले इनकी सभ्यता तथा संस्कृति उत्कृष्ट दशा में थी।

पृष्ठ ७२ पंक्ति ६ **उजड़े दयार (शहर)**—लखनऊ के उर्दू कवियों को मीर साहब ने अपना परिचय इस पद्य में दिया था—

क्या बूद बाश पूछो हो पूरब के साकिनो ?
हमको गरीब जान के हँस हँस पुकार के
देहली जो एक शहर था, दुनिया में इन्तखाब
रहते थे नामवर ही, जहाँ रोज़गार के,
उसको फ़लक ने लूट के बरबाद कर दिया
हम रहने वाले हैं, उसी उजड़े दयार के।

पृष्ठ ७४ पंक्ति १० **महि-फिरदौस**—(पृथ्वी का स्वर्ग) फ़ारसी का यह प्रसिद्ध पद्य दीवाने खास की दीवाल पर लिखा है।

"अगर फ़िर्दौस बर-रूए ज़मीनस्त—
हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त

पृष्ठ ३६ पंक्ति १६ **वेस्ट मिंस्टर अबे** (West Minster Abbey)—अँग्रेजों का प्रसिद्ध समाधि मन्दिर है। यहाँ पर इङ्गलैंड के महापुरुषों की समाधियाँ हैं।

कवि की कृतियाँ

पुरन्दर पुरी	चंदा
चित्रकूट चित्रण	ना !
चिरजानन्द चित्रण	गोबर गनेस
मुद्गल रुस्तम	ढपोर शङ्ख
मधु पयोनिधि	शेखचिल्ली
ज्योत्स्ना	लाल बुझक्कड़
लाल खिलौना	लाला
खेलो भैय्या	राष्ट्रीय राग २ भाग
गुड़िया	मेरी कहानी

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्व प्रकाश, कला प्रेस, इलाहाबाद।